



अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

Satyaanubhuti Ashram

श्लोक संख्या: 6.01

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ 01 ॥

हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी है और वही योगी है; केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है और केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।

सरल व्याख्या:

वास्तविक संन्यास बाहरी त्याग में नहीं, बल्कि आंतरिक अनासक्ति में है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों को केवल इसलिए पूरा करता है क्योंकि वे उसके धर्म हैं, न कि इसलिए कि उसे उनसे कुछ प्राप्त करना है, वही सच्चा योगी है। केवल अग्नि (सांसारिक सुख) या कर्मों को छोड़ देने से कोई महात्मा नहीं बन जाता; असली त्याग फल की इच्छा का त्याग है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य का पालन करते हुए फल की इच्छा से मुक्त रहना ही योग और संन्यास का वास्तविक स्वरूप है।

श्लोक संख्या: 6.02

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ 02 ॥

हिन्दी अनुवाद:

हे पाण्डव! जिसे संन्यास कहते हैं, उसे ही तू योग जान; क्योंकि संकल्पों (सांसारिक कामनाओं) का त्याग किए बिना कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

सरल व्याख्या:

संन्यास और योग अलग नहीं हैं। दोनों की जड़ एक ही है—मन की इच्छाओं और संकल्पों का त्याग। जब तक मन में 'ऐसा हो जाए' या 'वैसा मिल जाए' के संकल्प उठते रहेंगे, तब तक योग घटित नहीं हो सकता। अतः कर्मों को करते हुए भी भीतर से कामनाओं को छोड़ना ही योगी होने की अनिवार्य शर्त है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक संकल्पों का अंत ही योग की शुरुआत है।

श्लोक संख्या: 6.03

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते |

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते || 03 ||

हिन्दी अनुवाद:

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए 'कर्म' करना कारण (साधन) कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस पुरुष के लिए 'शम' (शांति या विक्षेपों का अभाव) कारण कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

जो साधक अभी योग के मार्ग पर चढ़ना शुरू कर रहा है, उसके लिए निष्काम कर्म करना अनिवार्य है क्योंकि कर्म से ही मन शुद्ध होता है। लेकिन जब साधक योग की ऊँचाई पर पहुँच जाता है (योगारूढ़), तब उसके लिए शांति और अंतर्मुखी होना ही मुख्य साधन बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शुरुआत में कर्म प्रधान होता है और सिद्धि प्राप्त होने पर शांति प्रधान हो जाती है।

श्लोक संख्या: 6.04

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते |

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते || 04 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस काल में मनुष्य न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में संपूर्ण संकल्पों का त्यागी वह पुरुष 'योगारूढ़' कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

योग की शिखर अवस्था वह है जहाँ इन्द्रियों के विषय (रूप, रस, गंध आदि) साधक को विचलित नहीं करते। वह कर्म तो करता है, पर उन कर्मों के फलों से उसे कोई लगाव नहीं रहता। जब मन के सारे स्वार्थपूर्ण संकल्प शांत हो जाते हैं, तब उसे योग में पूर्णतः स्थित माना जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण वैराग्य और संकल्पशून्यता ही योगारूढ़ होने की पहचान है।

श्लोक संख्या: 6.05

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् |

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः || 05 ||

हिन्दी अनुवाद:

अपने द्वारा अपना उद्धार करें और अपने आप को अधोगति में न डालें; क्योंकि यह मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

सरल व्याख्या:

यह श्लोक मनुष्य की व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर बल देता है। हमारा मन ही हमें स्वर्ग की ओर ले जा सकता है और वही हमें नरक की ओर गिरा सकता है। यदि हम मन को अनुशासित करते हैं, तो हम स्वयं के सबसे अच्छे मित्र हैं। यदि हम मन के गुलाम बन जाते हैं, तो हम स्वयं के सबसे बड़े शत्रु हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपना उत्थान या पतन हमारे अपने हाथों में है; कोई दूसरा हमारा उद्धार नहीं कर सकता।

श्लोक संख्या: 6.06

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः |

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् || 06 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस पुरुष द्वारा अपने आप से अपने आप को (मन और इन्द्रियों को) जीत लिया गया है, उसके लिए उसका आत्मा ही उसका मित्र है; किन्तु जिसने अपने आप को नहीं जीता है, उसके लिए उसका आत्मा ही शत्रु के समान शत्रुता में बरतता है।

सरल व्याख्या:

जिसने अपने विचारों और इंद्रियों पर विजय पा ली है, उसके लिए उसका अंतर्मन एक सहायक की तरह कार्य करता है जो उसे शांति की ओर ले जाता है। लेकिन जिसका मन अनियंत्रित है, वह मन ही उसे निरंतर भटकन, क्रोध और तनाव देकर उसके साथ शत्रुता का व्यवहार करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-विजय ही वास्तविक मित्रता है, और आत्म-पराजय ही सबसे बड़ी शत्रुता है।

श्लोक संख्या: 6.07

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः |

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः || 07 ||

हिन्दी अनुवादः

जिसने अपने आप को जीत लिया है, ऐसे शांत पुरुष के अन्तःकरण में परमात्मा सदैव स्थित रहते हैं; उसके लिए सर्दी-गर्मी, सुख-दुख और मान-अपमान सब एक समान हैं।

सरल व्याख्या:

जब मन जीत लिया जाता है, तब वह पूर्णतः शांत हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक को द्वंद्व (जैसे ठंड या गर्मी, सुख या दुख) परेशान नहीं करते। वह मान और अपमान दोनों में स्थिर रहता है। इसी परम शांति में उसे परमात्मा का निरंतर अनुभव होता है, क्योंकि उसकी बुद्धि अब बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक समता ही परमात्मा से जुड़ने का वास्तविक प्रवेश द्वार है।

श्लोक संख्या: 6.08

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः |

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः || 08 ||

हिन्दी अनुवादः

जिसका अन्तःकरण ज्ञान (शास्त्रीय बोध) और विज्ञान (अनुभवजन्य सत्य) से तृप्त है, जिसकी स्थिति अचल है, जिसने इन्द्रियों को भलीभाँति जीत लिया है और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण समान हैं, वह योगी 'युक्त' (परमात्मा से जुड़ा हुआ) कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

योग की सिद्धि तब मानी जाती है जब मनुष्य की दृष्टि में दुनिया की मूल्यवान वस्तुएँ (सोना) और मूल्यहीन वस्तुएँ (मिट्टी) एक समान हो जाएँ। उसकी तृप्ति बाहरी दुनिया से नहीं, बल्कि आंतरिक बोध से होती है। ऐसा व्यक्ति संसार की किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान और अनुभव जब एक हो जाते हैं, तब मनुष्य की दृष्टि में समता का भाव जागृत होता है।

श्लोक संख्या: 6.09

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु |
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते || 09 ||

हिन्दी अनुवाद:

सुहृद् (बिना कारण हित करने वाला), मित्र, शत्रु, उदासीन (तटस्थ), मध्यस्थ (बिचौलिया), द्वेष्य (घृणा के योग्य) और सम्बन्धियों में तथा साधुओं में और पापियों में भी जो समान बुद्धि रखता है, वह अत्यंत श्रेष्ठ है।

सरल व्याख्या:

साधक की प्रगति का सबसे बड़ा मापदंड उसका व्यवहार है। श्रेष्ठ योगी वह है जो केवल अपने प्रियजनों से ही नहीं, बल्कि शत्रुओं और पापियों से भी समता का व्यवहार करता है। उसकी बुद्धि भेदभाव से ऊपर उठ जाती है क्योंकि वह सबमें एक ही आत्म-तत्व को देखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना किसी भेदभाव के सबको एक समान देखना ही सर्वोच्च योग है।

श्लोक संख्या: 6.10

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः |
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः || 10 ||

हिन्दी अनुवाद:

योगी को चाहिए कि वह अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर, मन और शरीर को वश में रखते हुए, आशारहित और संग्रह रहित होकर निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाए।

सरल व्याख्या:

यहाँ साधना के लिए आवश्यक वातावरण और मानसिक स्थिति बताई गई है। योगी को एकांत का सेवन करना चाहिए ताकि बाहरी शोर कम हो। उसे किसी से कोई उम्मीद (आशा) नहीं रखनी चाहिए और अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह (अपरिग्रह) नहीं करना चाहिए। जब मन इन सब से मुक्त होता है, तभी वह परमात्मा में निरंतर एकाग्र हो सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एकांत, संयम और अपरिग्रह ही ध्यान योग के सफल होने की अनिवार्य शर्तें हैं।

श्लोक संख्या: 6.11 - 6.12

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ 11 ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ 12 ॥

हिन्दी अनुवाद:

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा—ऐसे अपने स्थिर आसन को स्थापित करके, उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए, मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए।

सरल व्याख्या:

ध्यान के लिए स्थान और आसन का चुनाव महत्वपूर्ण है। स्थान शांत और पवित्र होना चाहिए। आसन ऐसा हो जो शरीर को स्थिरता दे सके, ताकि लम्बे समय तक बैठने में कष्ट न हो। मन को एकाग्र करने का मुख्य उद्देश्य संसार को पाना नहीं, बल्कि अपने ही अन्तःकरण को निर्मल और शांत करना है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... बाहरी शुद्धि और बैठने का अनुशासन मन को एकाग्र करने में सहायक होता है।

श्लोक संख्या: 6.13 - 6.14

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः |
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् || 13 ||
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः |
मनः संयम्य मच्चित्तौ युक्त आसीत मत्परः || 14 ||

हिन्दी अनुवाद:

काया, सिर और ग्रीवा (गर्दन) को समान एवं अचल धारण करके, स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखते हुए; शांत अन्तःकरण वाला, भयरहित, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित और मन को संयम में रखकर मुझमें चित्त वाला योगी एकाग्र होकर मेरे परायण होकर बैठे।

सरल व्याख्या:

ध्यान के दौरान शरीर की मुद्रा (Posture) का वर्णन है। रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए ताकि ऊर्जा का प्रवाह निर्बाध रहे। दृष्टि को इधर-उधर भटकने से रोकने के लिए नासिका पर ध्यान टिकाना चाहिए। मानसिक रूप से निर्भयता और पूर्ण समर्पण भाव से ही परमात्मा की अनुभूति संभव है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... शारीरिक स्थिरता और मानसिक शांति का समन्वय ही सफल ध्यान की नींव है।

श्लोक संख्या: 6.15

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः |
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति || 15 ||

हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार निरंतर अपने आप को परमात्मा में लगाता हुआ, संयमित मन वाला योगी मुझमें रहने वाली 'निर्वाण' रूप परम शांति को प्राप्त होता है।

सरल व्याख्या:

जब योगी निरंतर अभ्यास द्वारा अपने मन को संसार से हटाकर परमात्मा में लीन कर देता है, तो उसे उस शांति का अनुभव होता है जिसे 'निर्वाण' कहा गया है। यह शांति क्षणिक नहीं, बल्कि शाश्वत है और सीधे परमात्मा से जुड़ी होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर अभ्यास और आत्म-संयम से ही परम शांति और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

श्लोक संख्या: 6.16

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः |
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन || 16 ||

हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत अधिक खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का; न बहुत अधिक सोने वाले का और न सदा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

सरल व्याख्या:

योग अति (Extremes) का मार्ग नहीं है, बल्कि संतुलन का मार्ग है। जो शरीर को बहुत अधिक कष्ट देता है या जो केवल भोगों में डूबा रहता है, वह ध्यान नहीं लगा सकता। योग के मार्ग पर चलने के लिए जीवन के हर व्यवहार में संयम की आवश्यकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... योग सिद्धि के लिए खान-पान और निद्रा का संतुलित होना अनिवार्य है।

श्लोक संख्या: 6.17

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु |
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा || 17 ||

हिन्दी अनुवाद:

दुखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार (विहार अर्थात् घूमना-फिरना) करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि योग जीवन से भागना नहीं, बल्कि उसे सलीके से जीना है। जिसका भोजन, आराम, कार्य और विश्राम संतुलित है, उसके लिए योग सभी दुखों को मिटाने वाली औषधि बन जाता है। अनुशासन ही साधक को मानसिक और शारीरिक कष्टों से मुक्त करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... नियमित और अनुशासित जीवनशैली ही दुखों के विनाश और योग की सफलता का आधार है।

श्लोक संख्या: 6.18

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते |

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा || 18 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस काल में विशेष रूप से वश में किया हुआ चित्त आत्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में संपूर्ण भोगों से स्पृहा (इच्छा) रहित पुरुष 'युक्त' कहा जाता है।

सरल व्याख्या:

योग की स्थिति वह है जब चित्त बाहरी इच्छाओं के पीछे भागना बंद कर दे और स्वयं की आत्मा में ही आनंद लेने लगे। जब किसी भी वस्तु को पाने की लालसा शेष नहीं रहती, तब माना जाता है कि साधक परमात्मा से पूर्णतः जुड़ गया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इच्छाओं का अंत और आत्म-स्थिरता ही योग की पराकाष्ठा है।

श्लोक संख्या: 6.19

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता |

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः || 19 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की दी गई है।

सरल व्याख्या:

भगवान एक बहुत सुंदर उदाहरण देते हैं। जैसे हवा के बिना दीपक की लौ बिल्कुल सीधी और स्थिर रहती है, वैसे ही सफल योगी का चित्त विचारों की हवाओं से विचलित नहीं होता। वह परमात्मा के ध्यान में पूरी तरह अचल और एकाग्र हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विचारों की शांति ही एकाग्रता की वास्तविक शक्ति है।

श्लोक संख्या: 6.20

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 20 ॥

हिन्दी अनुवाद:

योग के अभ्यास से निरुद्ध (रुका हुआ) चित्त जिस अवस्था में उपराम (शांत) हो जाता है और जिस अवस्था में वह अपने आप से अपने आप को देखता हुआ अपनी आत्मा में ही संतुष्ट रहता है।

सरल व्याख्या:

जब निरंतर योग के अभ्यास से मन पूरी तरह स्थिर होकर शांत हो जाता है, तब साधक को अपनी आत्मा का दर्शन होता है। उसे अपनी खुशी के लिए अब बाहरी संसार की आवश्यकता नहीं रह जाती; वह स्वयं के भीतर ही परम संतोष और आनंद का अनुभव करने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-दर्शन और आत्म-संतुष्टि ही योग का सर्वोच्च लक्ष्य है।

श्लोक संख्या: 6.21

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ 21 ॥

हिन्दी अनुवाद:

इन्द्रियों से अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनंत आनंद है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी तत्व से कभी विचलित नहीं होता।

सरल व्याख्या:

सांसारिक सुख इन्द्रियों के माध्यम से मिलते हैं, लेकिन आत्मा का सुख इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। इसे केवल एक शांत और शुद्ध बुद्धि ही महसूस कर सकती है। एक बार जब योगी इस गहरे आनंद को चख लेता है, तो वह सत्य के मार्ग से कभी पीछे नहीं हटता, चाहे बाहरी परिस्थितियाँ कैसी भी हों।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक आनंद संसार के किसी भी शारीरिक सुख से कहीं अधिक गहरा और स्थायी होता है।

श्लोक संख्या: 6.22

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः |
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते || 22 ||

हिन्दी अनुवाद:

परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुख से भी चलायमान नहीं होता।

सरल व्याख्या:

परमात्मा का बोध जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसे पाने के बाद मनुष्य को संसार की कोई भी वस्तु आकर्षित नहीं करती। यहाँ तक कि शारीरिक कष्ट या जीवन का सबसे बड़ा दुख भी उसकी मानसिक शांति को भंग नहीं कर सकता। वह पहाड़ की तरह अटल हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-साक्षात्कार वह सर्वोच्च संपदा है जिसके बाद मनुष्य पूर्णतः निर्भय और संतुष्ट हो जाता है।

श्लोक संख्या: 6.23

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् |
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा || 23 ||

हिन्दी अनुवाद:

जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है, जिसका नाम 'योग' है, उसको जानना चाहिए। वह योग न उकताए हुए (धैर्ययुक्त) चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ योग की एक नई परिभाषा देते हैं—"दुखों के साथ संबंध का विच्छेद ही योग है।" योग वह स्थिति है जहाँ दुख आपको छू भी नहीं सकते। इस अवस्था को पाने के लिए साधक को बिना घबराए और बिना थके, अटूट उत्साह और दृढ़ निश्चय के साथ निरंतर अभ्यास करना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... योग दुख का अंत करने वाली विद्या है, जिसे धैर्य और अटूट निश्चय से साधना पड़ता है।

श्लोक संख्या: 6.24

संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 24 ॥

हिन्दी अनुवाद:

संकल्प से उत्पन्न होने वाली संपूर्ण कामनाओं को शेष न रहे इस प्रकार (जड़ से) त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभाँति रोककर।

सरल व्याख्या:

साधना की विधि में सबसे पहले मन में उठने वाले 'संकल्पों' को रोकना होता है, क्योंकि कामनाएँ संकल्पों से ही जन्म लेती हैं। योगी को चाहिए कि वह मन की शक्ति का उपयोग करके इन्द्रियों को उनके विषयों (रूप, रस, शब्द आदि) से पूरी तरह खींच ले। इसमें कोई भी कोताही नहीं बरतनी चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए मन के संकल्पों का त्याग करना अनिवार्य है।

श्लोक संख्या: 6.25

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ 25 ॥

हिन्दी अनुवाद:

क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति (शांति) को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके फिर दूसरा कुछ भी चिन्तन न करे।

सरल व्याख्या:

मन को स्थिर करना रातों-रात संभव नहीं है। धैर्य के साथ धीरे-धीरे मन को संसार से हटाकर आत्मा में टिकाना चाहिए। एक बार जब मन परमात्मा के चिन्तन में लग जाए, तो फिर किसी और वस्तु या विचार को स्थान नहीं देना चाहिए। यह 'शून्य' और 'पूर्ण' की स्थिति है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर और धैर्यपूर्ण अभ्यास से ही मन को पूरी तरह शांत और एकाग्र किया जा सकता है।

श्लोक संख्या: 6.26

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ 26 ॥

हिन्दी अनुवाद:

यह चंचल और अस्थिर मन जिस-जिस कारण से (विषयों में) विचरता है, उस-उस से रोककर इसे बार-बार आत्मा के ही वश में करना चाहिए।

सरल व्याख्या:

मन का स्वभाव ही चंचल है, वह बार-बार भागेगा। लेकिन एक कुशल सारथी की तरह योगी को चाहिए कि जब भी मन किसी विचार में भटके, उसे वहाँ से प्यार और दृढ़ता से वापस खींच लाए और फिर से परमात्मा में लगा दे। यह अभ्यास की निरंतरता ही योग की सफलता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन को बार-बार वापस लाकर आत्मा में लगाना ही एकाग्रता का मूल अभ्यास है।

श्लोक संख्या: 6.27

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ 27 ॥

हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन भलीभाँति शांत है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है, ऐसे ब्रह्मरूप हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है।

सरल व्याख्या:

जब मन की अशांति और रजोगुण (भाग-दौड़ और बेचैनी) शांत हो जाते हैं, तब योगी पापों के प्रभाव से मुक्त होकर ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। इस अवस्था में उसे उस 'उत्तम सुख' की प्राप्ति होती है जो शब्दों के परे है। वह स्वयं ही आनंद स्वरूप बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक शांति और गुणों का संतुलन ही सर्वोच्च ईश्वरीय आनंद का मार्ग है।

श्लोक संख्या: 6.28

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः |
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते || 28 ||

हिन्दी अनुवाद:

पाप रहित योगी इस प्रकार निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्म-प्राप्ति रूप अनंत आनंद का अनुभव करता है।

सरल व्याख्या:

जैसे-जैसे साधक का अभ्यास गहरा होता है, उसके पुराने संस्कार और दोष मिटने लगते हैं। वह बिना किसी विशेष प्रयास के सहजता से परमात्मा के साथ जुड़ा रहता है। 'ब्रह्म-संस्पर्श' का अर्थ है ईश्वर के साथ सीधा जुड़ाव, जिससे मिलने वाला सुख असीमित और कभी न खत्म होने वाला होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर योग अभ्यास से जीव और ब्रह्म के बीच की दूरी मिट जाती है।

श्लोक संख्या: 6.29

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि |
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः || 29 ||

हिन्दी अनुवाद:

सर्वत्र समभाव से देखने वाला, योगयुक्त आत्मा वाला योगी अपनी आत्मा को संपूर्ण भूतों में स्थित और संपूर्ण भूतों को अपनी आत्मा में देखता है।

सरल व्याख्या:

योग की पूर्णता 'समदर्शन' में है। योगी अब केवल अपनी मुक्ति में नहीं रहता, उसे यह अनुभव होने लगता है कि जो आत्मा मेरे भीतर है, वही हर प्राणी, पशु और वनस्पति में है। उसे पूरी सृष्टि अपनी आत्मा का ही विस्तार लगने लगती है। यही वास्तविक अद्वैत भाव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा योगी वही है जो समस्त चराचर जगत को परमात्मा का ही रूप समझकर सबसे प्रेम करता है।

श्लोक संख्या: 6.30

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति |
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति || 30 ||

हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष मुझको सबमें देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

सरल व्याख्या:

यह भक्ति और ज्ञान का सुंदर मिलन है। भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति कण-कण में मेरी उपस्थिति देखता है, मैं उससे कभी दूर नहीं होता। वह सदैव मेरी सुरक्षा और सान्निध्य में रहता है। ऐसे भक्त और भगवान के बीच का संबंध अटूट हो जाता है; वे एक-दूसरे से कभी ओझल नहीं होते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का सर्वत्र दर्शन करना ही उनके साथ नित्य जुड़े रहने का रहस्य है।

श्लोक संख्या: 6.31

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः |
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते || 31 ||

हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष एकत्व भाव में स्थित होकर संपूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझको भजता है, वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

सरल व्याख्या:

जब योगी को यह अनुभव हो जाता है कि एक ही परमात्मा समस्त प्राणियों में विद्यमान है, तो उसकी भक्ति 'एकत्व' की हो जाती है। फिर वह चाहे संसार के कोई भी कार्य करे, उसका चित्त सदैव परमात्मा से जुड़ा रहता है। उसके लिए कर्म और भक्ति अलग नहीं रह जाते; वह जो कुछ भी करता है, वह ईश्वर की ही सेवा बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करने वाला व्यक्ति संसार में रहते हुए भी सदैव ईश्वर के सान्निध्य में रहता है।

श्लोक संख्या: 6.32

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन |

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः || 32 ||

हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भांति ही संपूर्ण भूतों में सुख और दुख को समान देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

सरल व्याख्या:

योग की सर्वोच्च अवस्था 'समानुभूति' (Empathy) है। जैसे मनुष्य को अपना सुख प्रिय और अपना दुख अप्रिय लगता है, वैसे ही जो दूसरों के सुख-दुख को भी अपना ही मानकर उनके साथ वैसा ही व्यवहार करता है, वही श्रेष्ठ योगी है। यह दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने का दिव्य भाव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और समता का भाव ही आध्यात्मिक प्रगति की सबसे बड़ी कसौटी है।

श्लोक संख्या: 6.33

अर्जुन उवाच |

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन |

एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् || 33 ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे मधुसूदन! जो यह योग आपने समभाव से कहा है, मन के चंचल होने के कारण मैं इसकी नित्य स्थिति को नहीं देख पा रहा हूँ (अर्थात् यह मन में स्थिर नहीं रह पाता)।

सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ एक व्यवहारिक समस्या उठा रहे हैं। भगवान ने जिस समत्व योग की बात की, वह सुनने में तो श्रेष्ठ है, लेकिन अर्जुन को लगता है कि मन इतना अस्थिर है कि वह इस शांति में टिक ही नहीं पाता। यह हर साधक की मूल समस्या है कि मन की गति उसे योग में स्थिर नहीं होने देती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की चंचलता आध्यात्मिक मार्ग की सबसे बड़ी व्यावहारिक बाधा है।

श्लोक संख्या: 6.34

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् |
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् || 34 ||

हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, मथ डालने वाला, बड़ा बलवान और दृढ़ है; इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यंत कठिन मानता हूँ।

सरल व्याख्या:

अर्जुन मन की शक्ति का वर्णन कर रहे हैं। मन केवल चंचल ही नहीं है, यह बुद्धि को मथ देता है (भ्रमित कर देता है) और बहुत जिद्दी है। जैसे बहती हवा को मुट्ठी में पकड़ना असंभव है, वैसे ही अर्जुन को लगता है कि इस बलवान मन को पूरी तरह वश में करना लगभग नामुमकिन है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन को नियंत्रित करना कठिन कार्य है, जिसके लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता होती है।

श्लोक संख्या: 6.35

श्रीभगवानुवाच |
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् |
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते || 35 ||

हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे महाबाहो! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है; किन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह 'अभ्यास' और 'वैराग्य' द्वारा वश में किया जाता है।

सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन की बात से सहमत हैं, पर वे समाधान भी देते हैं। मन को जीतने के दो ही हथियार हैं: 'अभ्यास' (बार-बार मन को परमात्मा में लगाने की कोशिश) और 'वैराग्य' (संसार के भोगों में दोष देखकर उनसे मोह हटाना)। अभ्यास मन को दिशा देता है और वैराग्य उसे गलत दिशा में जाने से रोकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर प्रयत्न और वैराग्य के बिना मन पर विजय पाना संभव नहीं है।

श्लोक संख्या: 6.36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः |
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्नुमुपायतः || 36 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन वश में नहीं है, ऐसे पुरुष द्वारा योग प्राप्त होना कठिन है और वश में किए हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधनों (उपायों) से इसे प्राप्त करना सहज है—यह मेरा मत है।

सरल व्याख्या:

जिसने अपने अनुशासन और इंद्रियों पर काम नहीं किया, उसके लिए योग केवल एक कल्पना रह जाएगा। लेकिन जिसने मन को जीतना सीख लिया है और जो सही विधियों से प्रयास करता है, उसके लिए परमात्मा का मिलन कठिन नहीं है। सफलता केवल उन्हीं को मिलती है जो अपने मन के स्वामी हैं, गुलाम नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-संयम ही योग की सफलता की पहली और अनिवार्य शर्त है।

श्लोक संख्या: 6.37

अर्जुन उवाच |
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः |
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति || 37 ||

हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! जो योग में श्रद्धा रखने वाला है, किन्तु संयमी नहीं है, जिसका मन योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है?

सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ 'योग-भ्रष्ट' साधक की चिंता कर रहे हैं। यदि किसी व्यक्ति के मन में श्रद्धा तो है, पर वह इतना दृढ़ नहीं कि मन को पूरी तरह वश में कर सके और बीच रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो जाए या वह भटक जाए, तो उसका क्या होगा? क्या उसकी सारी मेहनत बेकार चली जाएगी?

यह श्लोक हमें बताता है कि... साधक के मन में अक्सर यह भय रहता है कि यदि साधना पूरी न हुई तो क्या होगा।

श्लोक संख्या: 6.38

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि || 38 ||

हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित और आश्रयरहित पुरुष, छिन्न-भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता?

सरल व्याख्या:

अर्जुन को डर है कि ऐसा व्यक्ति 'माया' (संसार) से तो नाता तोड़ चुका है पर 'ब्रह्म' (परमात्मा) तक पहुँच नहीं पाया। वह उस बादल के टुकड़े की तरह तो नहीं हो जाएगा जो हवा में इधर-उधर भटककर बिखर जाता है और कहीं का नहीं रहता? क्या वह लौकिक सुख और पारलौकिक आनंद—दोनों से हाथ धो बैठेगा?

यह श्लोक हमें बताता है कि... अधूरा ज्ञान और अधूरी साधना मनुष्य के मन में अनिश्चितता पैदा करती है।

श्लोक संख्या: 6.39

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते || 39 ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कृष्ण! मेरे इस संशय को संपूर्ण रूप से छेदन करने (मिटाने) के लिए आप ही योग्य हैं; क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।

सरल व्याख्या:

अर्जुन पूरी तरह श्री कृष्ण की शरण में हैं। वे जानते हैं कि जन्म-मृत्यु और कर्मों की सूक्ष्म गति का ज्ञान केवल भगवान को ही हो सकता है। वे चाहते हैं कि कृष्ण उनके मन के इस गहरे डर को हमेशा के लिए मिटा दें। यह एक शिष्य का अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गहरे आध्यात्मिक संशयों का निवारण केवल एक पूर्ण गुरु या ईश्वर ही कर सकते हैं।

श्लोक संख्या: 6.40

श्रीभगवानुवाच ।
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 40 ॥

हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे पार्थ! उस पुरुष का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही; क्योंकि हे प्यारे! आत्म-कल्याण के लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

सरल व्याख्या:

यह गीता के सबसे सात्वनादायक श्लोकों में से एक है। भगवान् स्पष्ट घोषणा करते हैं कि नेक रास्ते पर चलने वाले का कभी बुरा नहीं होता। यदि साधना अधूरी भी रह जाए, तो भी वह मेहनत बेकार नहीं जाती। ईश्वर के लिए किया गया छोटा सा प्रयास भी साधक की रक्षा करता है और उसे पतन से बचाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भलाई के मार्ग पर किया गया कोई भी प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता और ईश्वर अपने भक्त का पतन नहीं होने देते।

श्लोक संख्या: 6.41

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 41 ॥

हिन्दी अनुवाद:

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके, फिर शुद्ध आचरण वाले श्रीमानों (सम्पन्न पुरुषों) के घर में जन्म लेता है।

सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन के संशय को मिटाते हुए कहते हैं कि साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। जो साधक योग मार्ग से विचलित हो गया था, उसे मृत्यु के बाद पहले तो स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में सुख मिलता है। उसके बाद, वह पृथ्वी पर ऐसे पवित्र और समृद्ध परिवार में जन्म लेता है जहाँ उसे भक्ति के संस्कार और साधना की सुविधाएँ आसानी से मिल सकें।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आध्यात्मिक पुरुष का पुनर्जन्म भी उसकी अधूरी साधना को पूरा करने के लिए अनुकूल वातावरण में होता है।

श्लोक संख्या: 6.42

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ 42 ॥

हिन्दी अनुवाद:

अथवा वह (यदि पहले से ही वैराग्यवान है तो) ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है; परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है, वह संसार में निश्चय ही अत्यंत दुर्लभ है।

सरल व्याख्या:

यदि साधक उच्च कोटि का था और केवल अंत में विचलित हुआ, तो उसे किसी अमीर घर के बजाय सीधे एक योगी परिवार में जन्म मिलता है। ऐसे घर में बचपन से ही उसे आत्मज्ञान का वातावरण मिलता है। भगवान कहते हैं कि ऐसा जन्म मिलना बहुत दुर्लभ है क्योंकि यहाँ से लक्ष्य तक पहुँचना बहुत आसान हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक योगी के घर में जन्म लेना पिछले जन्मों की महान तपस्या का फल है।

श्लोक संख्या: 6.43

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 43 ॥

हिन्दी अनुवाद:

वहाँ वह उस पहले शरीर में संग्रह किए हुए बुद्धि के संयोग को (अर्थात् योग के संस्कारों को) अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।

सरल व्याख्या:

नया जन्म मिलने पर पिछले जन्म का ज्ञान और संस्कार उसके भीतर फिर से जाग्रत हो जाते हैं। उसे शून्य से शुरुआत नहीं करनी पड़ती, बल्कि वह वहीं से शुरू करता है जहाँ पिछले जन्म में उसने साधना छोड़ी थी। उसके भीतर की तड़प उसे पहले से भी अधिक तीव्रता के साथ ईश्वर की ओर ले जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी आध्यात्मिक प्रगति हमारी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं होती, वह अगले जन्म में भी हमारे साथ चलती है।

श्लोक संख्या: 6.44

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः ।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ 44 ॥

हिन्दी अनुवाद:

वह (विषयों के वश में हुआ भी) उस पिछले अभ्यास के कारण ही परमात्मा की ओर आकर्षित किया जाता है। योग का जिज्ञासु भी शब्दब्रह्म (वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों के फल) का अतिक्रमण कर जाता है।

सरल व्याख्या:

पिछले जन्म की साधना इतनी शक्तिशाली होती है कि वह साधक को अपनी ओर खींच ही लेती है, भले ही वह अनजाने में संसार की ओर भटकने की कोशिश करे। यहाँ तक कि योग के बारे में केवल जानने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति भी उन लोगों से श्रेष्ठ है जो केवल कर्मकांडों और बाहरी दिखावे में उलझे रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संस्कार कभी मिटते नहीं; वे मनुष्य को सही समय पर सही मार्ग पर वापस ले आते हैं।

श्लोक संख्या: 6.45

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ 45 ॥

हिन्दी अनुवाद:

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कार-पुंज से इसी जन्म में संसिद्ध होकर, संपूर्ण पापों से रहित होकर, तत्काल ही परम गति को प्राप्त हो जाता है।

सरल व्याख्या:

जब साधक अपने पिछले जन्मों के अनुभवों और इस जन्म के कठिन परिश्रम को मिला देता है, तो उसकी शुद्धि पूर्ण हो जाती है। उसके मन के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। अनेक जन्मों की यह क्रमिक यात्रा अंततः उसे उस परम लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुँचा देती है, जहाँ फिर कोई बंधन नहीं रहता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर प्रयास और पिछले जन्मों की पूँजी मिलकर मनुष्य को पूर्णता तक पहुँचाती है।

श्लोक संख्या: 6.46

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 46 ॥

हिन्दी अनुवाद:

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है; इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन।

सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ योग की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। केवल शरीर को कष्ट देने वाला (तपस्वी), केवल किताबी ज्ञान रखने वाला (ज्ञानी), या केवल फल के लिए पुण्य करने वाला (कर्मि)—इन सबसे ऊपर वह योगी है जिसका मन परमात्मा में टिका है। इसलिए भगवान अर्जुन को किसी कर्मकांड में नहीं, बल्कि योग में स्थित होने की सलाह देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर से जुड़ाव ही संसार की सभी साधनाओं का सार है।

श्लोक संख्या: 6.47

योगिनामपि सर्वेषां मद्भक्तेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ 47 ॥

हिन्दी अनुवाद:

संपूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरंतर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

सरल व्याख्या:

अध्याय के अंत में भगवान सबसे ऊँची बात कहते हैं। यद्यपि योग के कई मार्ग हैं, लेकिन जो योगी अपनी पूरी आत्मा और अटूट श्रद्धा के साथ केवल मुझ (परमात्मा) में ही लीन रहता है, वही मेरा सबसे प्रिय और सर्वश्रेष्ठ योगी है। यहाँ ज्ञान और भक्ति का सुंदर मेल दिखाया गया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और अनन्य प्रेमपूर्वक ईश्वर में लीन रहना ही योग की पराकाष्ठा है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram